Journal
of the
Oriental Institute
M.S. University of Baroda
ISSN: 0030-5324
UGC CARE Group 1

हिंदुस्तानी उपशास्त्रीय संगीत एवं परंपरा कल, आज और कल :— बनारस के विशेष संदर्भ मे

रश्मि शिखा
शोध छात्रा
प्रदर्शन कला विभाग संगीत
लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय
फगवाड़ा, जलंधर, पंजाब

डॉ. प्रतिभा शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर
प्रदर्शन कला विभाग संगीत
लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय
फगवाड़ा, जलंधर, पंजाब

सारांश

भारत की संस्कृति साधकों के संस्कृति रही है। साधना में अपना सर्वस्व समर्पित करने वाले ऋषियों के गौरवशाली इतिहास को संजोते हुए भारतीय संस्कृति वर्तमान काल में विविध क्षेत्र के साधकों के सृजनार्थ उचित वातावरण का निर्माण करती रहती है। साधना के विविध क्षेत्रों में कला की साधना तथा कला के साधकों के विशिष्ट भूमिका रही है।भारतीय संस्कृति विविध कला साधकों को अपने अंक में धारण करके उन्हें पुष्पित तथा पल्लवित होने का उचित अवसर प्रदान करती रहती है। ऐसे विभिन्न स्थान कला के लिए उपजाऊ है किंतु उत्तर वाहिनी मां गंगा के तट पर अवस्थित काशी अथवा बनारस साहित्य, संस्कृति तथा संगीत के लिए भी विश्व प्रसिद्ध स्थान है। बनारस की पावन धरती पर जहां पाणिनि की अष्टाध्याई का अवतरण हुआ तो वही तुलसीदास जी द्वारा रामचरितमानस का लेखन भी गंगा के पावन तट पर ही हुआ। धार्मिक नगर होने के बावजूद भी बनारस अनेक क्षेत्रों के लिए जाना जाता है। भारतवर्ष के प्राचीनतम नगरों में से एक काशी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि एवं विशाल सांगीतिक परंपरा के कारण प्राचीन काल से ही आकर्षण का केंद्र रहा है, यहां का संगीत अनेक सौंदर्यात्मक पहलुओं को अपने आंचल में समेटे हुए हैं न केवल गायन अपितु वादन तथा नृत्य के क्षेत्र में भी भारतीय संस्कृति के विभिन्न रंग बनारस की संगीत परंपरा में परिलक्षित होते हैं।

बनारस के प्रचलित संगीत परंपरा में शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय दोनों ही पक्ष विद्यमान हैं जिनमें उपशास्त्रीय संगीत में विशेष ख्याति प्राप्त की है, जैसे— ठुमरी दादरा, होरी, कजरी,बारहमासा आदि अनेक गायन शैलियां बनारस में प्रचलित हैं। इन गायन शैलियों ने बनारस की पहचान राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अपितु अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी काशी को स्थापित किया है। बनारस के घरानेदार कलाकारों में एक और जहां ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा आदि शैलियों के बेजोड़ कलाकार हुए वहीं दूसरी ओर उपशास्त्रीय तथा लोक गायन शैली के भी रस सिद्ध कलाकार हुए जिनकी संगीत के प्रति समर्पण तथा मधुर गायकी का सिक्का कलाकारों से लेकर जनमानस्य तक के अंतर मन में समाहित रहा है।

संगीत की समस्त विधाओं में समान अधिकार रखने वाले तथा इस स्थान को समृद्ध एवं विश्व स्तर तक प्रतिष्ठित करने के लिए यहां के महान संगीतज्ञ होने अपना अमूल्य योगदान दिया है तथा बनारस के कलाकारों द्वारा दिए गए योगदान की लंबी सूची है। बनारस के संगीत कलाकारों में शहनाई को वैश्विक स्तर पर लाने वाले उस्ताद बिस्मिल्लाह खान (भारत रत्न) तबला वादन के क्षेत्र में भारतीय संगीत को नए आयाम देने वाले कलाकारों में पंडित गुदई महाराज, पंडित किशन महाराज, पंडित अनोखेलाल मिश्र आदि गायन में पंडित राजन साजन मिश्र, श्रीमती गिरिजा देवी, पंडित छन्नूलाल मिश्र आदि कलाकार इस सांस्कृतिक क्षेत्र से ही संबंधित हैं।

मुख्य शब्द : बनारस, प्रस्तुतीकरण, परंपरा, कलाकार, उपशास्त्रीय, शैली, संगीत, संस्कृति, संरक्षण

परिचय

साहित्य कला संस्कृति धर्म दर्शन एवं संगीत इत्यादि अन्य क्षेत्रों में काशी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। काशी जिसे हम वाराणसी बनारस इत्यादि नाम से भी जानते हैं यह भारतवर्ष के प्राचीनतम नगरों में से एक है। विश्व के अन्य प्राचीनतम नगरों जेरूसलम एथेंस तथा पीकिंग से इसकी तुलना की जा सकती है। काशी की महिमा का वर्णन अनेक पुराणों, उपनिषदों, वेदों एवं महाकाव्यों से प्राप्त होता है। बनारस शहर गंगा नदी के बाएं तट पर अर्द्ध चंद्राकार अवस्थित है।

उत्तर वाहिनी मां गंगा के पवित्र तट पर बसी बाबा विश्वनाथ की नगरी में प्रसारित गायन श्रृंखला को बनारसी गायकी की उपाधि दी गई है। यह प्राचीन काल से ही धार्मिक,सांस्कृतिक, साहित्यिक कला साधक नगरी के रूप में प्रख्यात है।

भारतीय संगीत आरंभ से ही दो धाराओं में प्रवाहित होता रहा है जिनमे प्रथम धारा का उद्देश्य धार्मिक समारोह पर विधि विधान होता था तथा दूसरा लौकिक समारोह पर प्रयुक्त होता था जिसका उद्देश्य केवल मनोरंजन था। प्रथम धारा (मार्ग) कहलाई तथा दूसरे को (देसी) की संज्ञा प्रदान की गई। दोनों ही संगीत का मूलाधार स्रोत जन मानस का संगीत था केवल अंतर यह था की प्रथम को संस्कार परिष्कार तथा शास्त्र आधार प्राप्त होने के कारण उच्च वर्ग या शास्त्रीय संगीत में स्थान प्राप्त हुआ तथा वहीं दूसरी ओर लोक रुचि के अनुकूल विकसित होने के कारण सामान्य जनमानस में प्रचलित हुआ।

वर्तमान समय में संगीत की समस्त विधाओं में उपशास्त्रीय संगीत विशेष रूप से प्रचलित हुआ। निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि उपशास्त्रीय संगीत भी एक श्रेष्ठ कलात्मक गेय विधा है तथा भारतीय संगीत में उसका स्थान अन्यतम है। उपशास्त्रीय संगीत,संगीत का वह भाग है जिसमें शास्त्रीय संगीत तथा लोक संगीत दोनों के ही प्रमुख तत्व विद्यमान रहते हैं।

बनारस की संगीत परंपरा प्रारंभ से ही बहुमुखी रही है। ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा गायकी में बनारस की गायकी का एक अपना ही रंग है एक अपना ही स्वरुप है। हर प्रकार की गायकी को समाहित करने के कारण बनारस के कलाकारों को चारों पट का कलाकार कहा जाता है। बनारस घराने का नाम लेते ही ठुमरी, दादरा, कजरी, चौती, होरी,बारहमासा आदि मधुर गायन शैलियां वातावरण में मिठास घोल देती है। यहां की गायकी लोक तत्व एवं शास्त्रीय तत्वों का मिश्रित स्वरूप है। शास्त्रोक्त नियम के अनुसार लोक संगीत से ही शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति मानी जाती है और शास्त्रीय संगीत से ही उपशास्त्रीय संगीत नियमबद्ध तरीके से अस्तित्व में आया होगा, क्योंकि माना जाता है उप शास्त्रीय संगीत की शैलियां जैसे ठुमरी, टप्पा, कजरी, चौती होरी, दादरा आदि के मूल में लोक संगीत ही था और इन्हीं रूपों में या आज भी विद्यमान है। इस गायन शैली में शब्द, स्वर तथा ताल, रचना के मुख्य घटक हैं।बंदिशों में स्वर की योजना, लगाव की शैली, रखाव का ढंग, तालों का चयन, लय की योजना तथा शब्दों का अधिक अथवा कम प्रयोग यह उपशास्त्रीय रचनाओं के विशेषताओं में आते हैं जिसे कलाकार अपनी योग्यता के अनुसार प्रयोग कर प्रसारित करता है। बनारस में प्रचलित उपशास्त्रीय संगीत में रागों की शुद्धता से अधिक भाव सौंदर्य एवं रस माधुर्य को विशेष महत्व दिया जाता है। इसमें पद के साहित्यिक सौंदर्य को ही आधार मानकर कलाकार उसके भाव पक्ष की ओर विशेष जोर देता है परंतु इन भावों को स्वर द्वारा ही स्पष्ट किया जा सकता है। ऊपशास्त्रीय गायन शैली चंचल तथा चपल गायकी है।इसमें श्रृंगारिता की भावना अधिक है तथा शैली रसीली है। इसके गीत शैलियों में गंभीर राग

अथवा तालों का प्रयोग नहीं किया जाता। उपशास्त्रीय संगीत में नियमों का शिथिल प्रयोग संगीत को चमत्कारिक एवं विशिष्ट स्वरूप प्रदान करता है उसमें मुर्की,पुकार, बहलावा, भाव प्रधान स्वर प्रयोग, हृदयग्राही, अथवा मधुरतम रसों का प्रयोग मंत्रमुग्ध कर देता है।

शोध प्रश्न

बनारस में संगीत में अनेक प्रकार के विधायें प्रचलित हुई हैं तथा तथा अपने प्रकारों तथा प्रयोग द्वारा भारतीय संगीत जगत को उच्च स्तर प्रदान किया है, किंतु सवाल यह है कि बनारस के उपशास्त्रीय संगीत जैसे ठुमरी, दादरा, चौती कजरी आदि ने बनारस के संगीत के उन्नयन में क्या भूमिका निभाई है? तथा भारतीय जनमानस ने इस शैली को किस प्रकार अपनाया तथा बनारस की उपशास्त्रीय शैली तथा शास्त्रीय शैली में क्या विभिन्नता अथवा समानताएं हैं?

बनारस का सांगीतिक विवरण

कला,धर्म तथा संस्कृति की राजधानी बनारस, मैं अगर संगीत की बात करें तो भारतीय शास्त्रीय संगीत के समस्त विधाएं यहां प्रचलित हैं तथा अनेक सिद्ध हस्त कलाकारों का इस पावन धरती पर जन्म हुआ है। उन्होंने अपनी संगीत साधना से इस धरा को अभिसंचित कर विश्व पटल पर ख्याति अर्जित की है। बनारस की संगीत परंपरा लगभग तीन चार सौ वर्ष प्राचीन मानी जाती है। बनारस घराने के गायन शैलियों में ध्रुपद, धमार, ख्याल, तराना, तिरवट से लेकर ठुमरी, दादरा, टप्पा, टप्प तराना के साथ ही होली, कजरी, चौती, घाटों, पूर्वी तथा बारहमासा इत्यादि अनेक लोक शैलियों के सरस गायन वादन की समृद्ध परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है।

बनारस में कई प्रमुख संगीतकार, दार्शनिक, कवि अथवा लेखक हुए हैं। बनारस एक छोटा सा भारत है जहां हर क्षेत्र से आए कलाकारों की लंबी फेहरिस्त है। बनारस को नटराज की नगरी, पवित्र भारत का शहर, भारत की धार्मिक राजधानी, शिव का शहर तथा ज्ञान प्राप्ति के साधन के रूप में जाना जाता है।

इन्हीं कारणों से बनारस के प्राचीनतम संगीत का आधार धार्मिक भी है।

काशी नगरी का ऐतिहासिक महत्व समृद्ध एवं गौरवशाली है। इसकी प्राचीनता न केवल इतिहासिक ग्रंथों अपितु विविध शास्त्रीय प्रमाणों एवं अभिलेखों द्वारा सत्यापित है। संगीत, कला, दर्शन, ज्योतिष एवं साहित्य की परंपरा का पोषक होने के कारण काशी का उल्लेख सभी प्राचीन ग्रंथो में प्राप्त होता है। बनारस ने कला के हर अंक को स्वयं में अंकित किया है यही कारण है कि बनारस के अधिकतर कलाकार चौमुख गायक के रूप में माने जाते हैं।

बनारस में प्रचलित गायन शैलियों के अतिरिक्त वादन जैसे – वीणा, सितार, सारंगी, वायलिन, संतूर, सरोद इत्यादि तंत्री वाद्यों तथा मृदंग, पखावज, तबला इत्यादि अवनद वाद्यो एवं शहनाई, बांसुरी, हारमोनियम, इत्यादि सुषिर वाद्यों तथा जल तरंग, काष्ट तरंग इत्यादि वाद्यों का भी दक्षतापूर्ण वादन हमें देखने को मिलता है। गायन वादन के ही भांति बनारस में कथक नृत्य की परंपरा भी लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठा के शीर्ष पर विराजमान है इस प्रकार बनारस के संगीत की व्यापकता एवं अनूठेपन का अनुमान स्वयं ही लगाया जा सकता है। गायन वादन तथा नृत्य तीनों ही विधाओं में बनारस के अनगिनत संगीता क्यों ने अपने जीवन काल में संगीत जगत में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है तथा इस परंपरा के संवाहक आज भी संगीत यात्रा को अनवरत आगे बढ़ा रहे हैं।

बनारस की प्रचलित परंपरा के संरक्षण एवं संवर्धन में यहां की सम्मिलित परंपराओं का विशेष योगदान है।

16वीं 17वीं शताब्दी से लेकर आज से 40 से 50 वर्ष पूर्व तक बनारस के संगीतज्ञों एवं उनके व्यक्तित्व का जो परिचय प्रस्तुत हुआ वह बनारस के सभी संगीत विधाओं के गुनीजनों में समान रूप से बना रहा है ऐसे ही संगीत साधकों ने अपने ज्ञान तथा कलात्मक व्यक्तित्व के आधार पर बनारस में उन्होंने कई समूह निर्मित किये। यह परंपराए बनारस के अंतर्गत सम्मिलित परंपराएं थी जिन्होंने सम्मिलित होकर बनारस के संगीत के हर पक्ष का संरक्षण एवं संवर्धन किया।

1. **पियरी परंपरा**

पंडित दिलाराम मिश्र इस परंपरा के प्रवर्तक माने जाते हैं। 16वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में इनका समय माना जाता है। इन्होंने राधा वल्लभ संप्रदाय के विद्वान संगीतज्ञ श्री हित हरिवंश जी से लगभग 35 वर्षों तक वृंदावन में रहकर छंद प्रबंध, ध्रुपद, विष्णुपद, आदि गायन शैलियों के उत्कृष्ट शिक्षा प्राप्त की तथा (सेवक) उपनाम से ध्रुपद की अनगिनत रचनाएं की। पंडित दिलाराम मिश्र के वंशजों में प्रसिद्ध मनोहर जीह पंडित ठाकुर दयाल मिश्र जी ने इस परंपरा को ख्याल, टप्पा, होरी इत्यादि शैलियों से और भी समृद्ध किया।

2. **तेलियाना परंपरा**

बनारस के तेलियाना नामक स्थान को वर्तमान में शिवाला, के नाम से जाना जाता है। इसका सादिक अली जो मुगल शासक बहादुर शाह जफर के दरबारी कलावंत थे तथा ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित होने के बाद अपने परिवार को साथ लेकर बनारस आकर बस गए। बाद में काशी नरेश के दरबार में कलावंत नियुक्त किए गए। इस घराने के उस्ताद आशिक अली खान के काल तक ध्रुपद, ख्याल टप्पा आदि की गायन एवं बीन वादन की कला विद्यमान थी।

3. **पंडित जगदीप मिश्र की परंपरा**

बनारस ठुमरी गायन शैली के अग्रणी गायक के रूप में इनका नाम लिया जाता है। पंडित जगदीप मिश्र आजमगढ़ जिले के हरिहरपुर ग्राम के निवासी थे। आज भी हरिहरपुर गांव में संगीत की समृद्ध परंपरा है। कालांतर में पंडित जगदीप मिश्र जी बनारस के कबीर चौराह स्थान पर परिवार समेत आकर बसे। गायन की अनेक शैलियों ज्ञाता होने के साथ ही साथ नृत्य कला के भी प्रख्यात विद्वान थे तथा ठुमरी गायन शैली में आपको विशेष अधिकार प्राप्त था।

4. **पंडित शिवदास –प्रयाग जी की परंपरा**

इन दोनों भाइयों ने सांकेतिक शिक्षा अपने मामा पंडित राम प्रसाद मिश्रा जी से प्राप्त की थी तथा बाद में दोनों भ्राता काशी नरेश के दरबारी कलावंत उस्ताद मोहम्मद अली से भी शिक्षित हुए। शिवदास जी गायन के साथ–साथ बीन, सितार और सुरसिंगार, सरोद इत्यादि वाद्यों के कुशल वादक भी थे। इस परंपरा के अनुपम गायक के रूप में पंडित मिठाई लाल मिश्र जी का नाम आता है। पंडित मिठाई लाल जी, पंडित प्रयाग मिश्र जी के सुयोग्य पुत्र एवं शिष्य थे। इस परंपरा में सारंगी, बीन तथा गायन आदि से संबंधित अनेक उत्कृष्ट कलाकार हुए हैं।

ISSN: 0030-5324
UGC CARE Group 1

5. पंडित जयकरन मिश्र जी की परंपरा

बेतिया राज दरबार के ध्रुपदाचार्य श्री जयकरन मिश्र मूलतः बेतिया, बिहार के निवासी थे। बाद में बेतिया से बनारस आकर बस गए उनके शिष्यों में प्रसिद्ध वाग्यकार, पंडित बड़े रामदास जी सुप्रसिद्ध ध्रुपद गायक तथा पंडित भोलानाथ भट्ट आदि महान संगीतज्ञों के नाम सम्मिलित है तथा पंडित बड़े रामदास जी रिश्ते में आपके दामाद थे।

6. पंडित ठाकुर प्रसाद मिश्र जी की परंपरा

सन 1848 में जन्मे पंडित ठाकुर प्रसाद मिश्र जी को सांगीतिक शिक्षा पियरी परंपरा के गायक पंडित प्रसिद्धू मिश्र जी के सुपुत्र शिव सहाय मिश्र जी से प्राप्त हुई। ठाकुर प्रसाद मिश्र जी टप्पा गायन शैली के विलक्षण गायक होने के साथ–साथ वीणा और सारंगी के भी वादक थे। पंडित छोटे रामदास जी, हुस्ना बाई, इत्यादि कलाकारों को अपने गायन की शिक्षा प्रदान की एवं बैजनाथ प्रसाद मिश्र को अपने सारंगी का ज्ञान दिया। इस परंपरा के उत्तराधिकारी पंडित छोटे रामदास जी ने ख्याल एवं टप्पा गायन शैली में अपना कीर्तिमान स्थापित किया।

7. पंडित धन्नु संवरू मिश्र जी की परंपरा

प्रख्यात ध्रुपद गायक धन्नु जी सँवरू जी मूलतः बेतिया बिहार के ही निवासी थे। तथा संभवत जयकरन जी के समकालीन थे। पंडित छोटे रामदास जी को भी ध्रुपद गायन की शिक्षा आप दोनों भ्राताओं के माध्यम से ही प्राप्त हुई।

8. पंडित बख्तावर मिश्र जी की परंपरा

बख्तावर मिश्र जी मूलतः बेतिया बिहार के निवासी थे तथा काशी नरेश के दरबार में दरबारी गायक थे। आप ध्रुपद के महान गायक होने के साथ–साथ उत्कृष्ट जल तरंग वादक भी थे।

9. पंडित दरगाही मिश्र जी की परंपरा

आपको गायकी शिक्षा पंडित शिव सहाय मिश्र जी के द्वारा प्राप्त हुए तथा तबले की शिक्षा आपने अपने पिताजी से प्राप्त की। दरगाही जी के पूर्वज श्री राम शरण मिश्र बनारस बाज के प्रवर्तक पंडित राम सहाय जी के शिष्य थे। पंडित दरगाही मिश्र जी गायन एवं तबले के साथ–साथ बीन,सितार, सारंगी आदि वाद्यों के भी कुशल वादक थे।

10. पंडित मथुरा मिश्र जी की परंपरा

आप ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि शैलियों के कुशल ज्ञाता एवं प्रसिद्ध गायक थे तथा काशी के विजयनगर राज दरबार में राज गायक के पद पर सुशोभित थे।आपने राम प्रसाद मिश्र (रामू जी) को संगीत की शिक्षा आपके द्वारा ही प्राप्त हुई।रामू जी अप्रतिम टप्पा, ठुमरी गायक के रूप में प्रसिद्ध हुए। मथुरा जी की वंश परंपरा एवं शिष्य परंपरा में अनेक गायक सारंगी वादक एवं तबला वादक हुए।

इन कलाकारों के योगदान से बनारस की प्राचीन संगीत परंपरा बहुत समृद्ध थी।

इन कलाकारों ने अपनी साधना, समर्पण एवं संवर्धन के बल पर बनारस की गौरवशाली परंपरा को संरक्षित किया।

बनारस की उपशास्त्रीय गायन परंपरा विशेषताएं एवं विलक्षणताएं

संगीत कला के दो महत्वपूर्ण बिंदु हैं– स्वर तथा लय। इन्हीं दो महत्वपूर्ण स्तंभों से ही संगीत रूपी महल स्थापित है। सूक्ष्म दृष्टिपात करने पर यह तथ्य ज्ञात होता है कि स्वर एवं लय इन्हीं दो माध्यमों के बीच भिन्न–भिन्न शैली से एक विभाजन रेखा को खींचकर हर परंपरा ने अपने मौलिकता एवं स्वतंत्र अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाए रखा है।

भारतीय संगीत का विकास एक लंबे इतिहास क्रम को प्रस्तुत करता है। वैदिक काल से लेकर मध्यकाल एवं आधुनिक काल तक भारतीय संगीत ना जाने कितनी प्रकार की गायन शैलियों, विविध प्रवृत्तियां एवं संस्कृतियों से अनुप्रेरित होता आया है। प्रचलित मान्यताओं के आधार पर अनेक प्रकार की शैलियों ने जन्म लिया जो कभी संगीत, कभी धर्म, तो कभी राज्य संरक्षण के चक्र के मध्य घूमता रहा है। भारतीय संगीत में अनेक प्रकार की शैलियों ने जन्म लिया जैसे ध्रुपद, धमार, ख्याल इसी क्रम में उपशास्त्रीय संगीत के अंतर्गत ठुमरी, दादरा, चौती, कजरी आदि विधाओं का जन्म हुआ। जिनमे ठुमरी को प्रथम स्थान प्राप्त है। इस प्रसिद्ध गायन शैली का प्रचार प्रसार लखनऊ दरबार से माना जाता है। कलाकारों के अन्य दरवारो में तथा विभिन्न स्थानों में आदान–प्रदान के कारण यह प्रथा बनारस परंपरा से जुड़ी तथा वहां का अभिन्न अंग बन गई। भारतीय संगीत में गायन से जुड़े अनेक घराने हैं तथा हर घराने की अपनी–अपनी मान्यताएं हैं।

भारतवर्ष में प्रचलित घराना परंपरा के अंतर्गत किसी घराने ने लय को मौलिक रूप माना, तो किसी घराने ने स्वर तथा लय दोनों को ही समान माना, तो किसी घराने ने लय की प्रधानता के साथ स्वर को विशेषता प्रदान की। मूलतः सारांश यह है कि कंठ संगीत के शारीरिक अंग उपांगों के रूप में आलाप, स्वर संयोजन, मींड,गमक, मुर्की, खटका,सरगम एवं बंदिशों के प्रभावशाली प्रस्तुतीकरण में स्वच्छता, सरगम के विभिन्न प्रकारों पर अधिकार इत्यादि तानों के साथ नवीन ढंग से सम पर आने का नवीन प्रयोग इत्यादि अवयवों पर इस परंपरा में विशेष ध्यान दिया जाता है।

यहां हर प्रकार की गायकी की परंपरा है– जिनमे छंद, प्रबंध, विष्णुपद, ध्रुपद धमार, होरी , प्राचीन अवयवों के साथ तथा बाद के समय में विकसित ख्याल टप्पा, ठुमरी, तराना दादरा गजल भजन,कजरी, चौती, बारहमासा तक की लोकप्रिय गायकी को सअधिकार गाने में विशेषता तथा विशिष्टता इस परंपरा में प्राप्य है। यहां की उपशास्त्रीय गायन शैली जो शास्त्रीय शैली पर आधारित होकर लोक भाषा के रंग में डूबी होती है तथा बनारस का नाम ठुमरी, दादरा, चौती कजरी, विधाओं में सबसे पहले लिया जाता है।

यह सर्व विदित है कि आज बनारस उपशास्त्रीय गायन शैली का पर्याय है। ठुमरी, दादरा अथवा रसीली गायकी की अगर बात की जाए तो बनारस का नाम सबसे पहले आता है।

कल्पनाशीलता तथा स्वरों का सुंदर प्रयोग कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिलती अनूठी रचनात्मकता के बल पर गायन के हर अंग को यहां की परंपरा ने आत्मसात कर बनारस की उपशास्त्रीय गायन शैली को विश्व स्तर तक स्थापित किया है।

Journal
of the
Oriental Institute
M.S. University of Baroda
ISSN: 0030-5324
UGC CARE Group 1

प्रसिद्ध कलाकार पंडित छन्नूलाल मिश्र जी बताते हैं कि– ठुमरी शास्त्रीय संगीत के बहुत नजदीक होती है, इसमें आलाप्ति,बोल बनाव, एक–एक स्वरों की बढ़त बोल बांट, स्थाई अंतरा,लयकारी, एवं भावाभिव्यक्ति होती है। ठुमरी की संपूर्ण रचना भी रागों पर आधारित होती है किंतु राग नियमों में थोड़ी छूट होती है क्योंकि इससे गीत की खूबसूरती बढ़ती है। यह शास्त्रीयता के कठोर नियमों के विरुद्ध है, इसकी किंतु इसका भाव पक्ष शास्त्र पक्ष पर बहुत भारी पड़ता है और इसमें तान, पलटा, सरगम जैसी विस्तार की क्रियाएं नहीं होती किंतु भाव तथा मींड,मुर्की, ऐसे सुंदर अवयवों का इतना सुंदर समायोजन होता है की सुनने वाले को मंत्रमुग्ध कर देता है। यहां के गायकी में अलौकिक आनंद की अनुभूति होती है। गायन प्रस्तुतीकरण के समय सौंदर्य पक्ष को समझते हुए रचना को स्थापित करने का अद्भुत कलात्मक प्रदर्शन दृष्टिगत होता है, यह बातें बनारस की परंपरा के किसी भी कलाकार को सुनने से स्पष्ट हो जाती है।

उप शास्त्रीय संगीत एवं उसके प्रकार

संगीत मानव समाज की कलात्मक उपलब्धियों और सांगीतिक, सांस्कृतिक परंपराओं का मूर्तिमान प्रतीक है। यह आदिम काल से जनजीवन के आत्मिक उल्लास और सुखानुभूतियों की ललित अभिव्यक्ति का मधुरतम माध्यम रहा है।

भारतीय संगीत की प्राचीन परंपरा में हमारे पूर्वजों ने अपने मानसिक आध्यात्मिक सामाजिक एवं पारिवारिक विकास के लिए अनेक विधाओं का अनुसंधान किया। अथक परिश्रम तथा अपनी कलात्मक एवं रचनात्मक के पक्ष से यह निश्चित किया कि संगीत का प्रयोग अनेक प्रकार के माध्यमों से कर मानव विभिन्न प्रकार से विकास पथ पर अग्रसर हो सकता है।

मानव प्रकृति के अनुसार चलता है तथा प्रकृति प्रदत्त माध्यमों को अपनी आवश्यकता तथा अपने अवयवों में संजोता है। मानव प्रकृति के साथ–साथ संगीत का विकास भी धीरे–धीरे हुआ। आज से कई हजार वर्ष पहले जब मानव जाति असभ्य थी उस समय भी उसके हृदय में प्रकृति और उसके जीवन सौंदर्य के प्रति आकर्षण था, अनुभूति थी तथा अनेक उदगार थे इसी परिणाम के रूप में

संगीत आज मानव उदगार, उत्सवों, रीति रिवाज तथा अनेक माध्यमों से आज दृष्टिगत है।

भारतीय संगीत के प्राचीन दृष्टिकोण से जब आरंभ हुआ तो संगीत लोक तथा शास्त्रीय दो भागों में विभाजित हुआ। शास्त्रीय जो शास्त्रोक्त था तथा लोक संगीत जो सामान्य जनमानस का संगीत जो धीरे–धीरे विकसित हुआ तथा संगीत के अंतर्गत समाज में सामाजिक उत्सवों, शादी जन्मोत्सव, पर्व त्यौहार आदि के अंतर्गत उत्सव के रूप में संगीत का प्रयोग वर्णित है।

इन्हीं लोक तथा शास्त्रीय प्रयोग के फल स्वरुप भारतीय संगीत में उपशास्त्रीय जिसे अर्धशास्त्रीय संगीत भी कहा जाता है यह एक प्रसिद्ध शैली के रूप में विकसित हुआ। जिसमें शास्त्रीय नियम भी होते हैं जो थोड़े लचीले होते हैं तथा जिनमे लोक रंग की छाप भी होती है। वर्तमान में शास्त्रीय एवं लोक का मिश्रित रूप मे एक लोकप्रिय संगीत है।

विशेषताओं में यह शास्त्रीय संगीत की तुलना में अधिक लचीला होता है तथा इसमें भावों और रंजकता पर अधिक ध्यान दिया जाता है तथा शास्त्रीय संगीत की तुलना में यह अधिक लोकप्रिय है जिसे सामान्य जनमानस द्वारा विशेष रूप से पसंद किया जाता है।

जैसे– ठुमरी, दादरा, टप्पा, चौती, होरी, कजरी, झूला ऐसी विधा जो भाव पक्ष तथा संगीत के चमत्कारिक एवं विशिष्ट स्वरूप को अपना कर दर्शकों को मन्त्रमुग्ध कर देती है।

ठुमरी

उपशास्त्रीय संगीत की कोटि में आने वाली गायन शैलियों में सबसे प्रधान, महत्वपूर्ण तथा हृदयग्राही शैली है। मध्यकाल में कलाकार इस गाने शैली को निम्न स्तर का गायन समझते थे तथा मंच पर गाने में सकुचाते थे, किंतु 18 में शताब्दी के बाद इसका प्रचार प्रसार विशेष तौर पर हुआ। मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात अनेक राजा तथा सूबेदार स्वतंत्र हो गए तथा दिल्ली के राज्य की शक्ति छीन हो गई ऐसे में गायक वादक अन्य दरबारों में आश्रय तथा शरण लेने लगे। ऐसे में संगीतज्ञों रुझान अन्य शैलियों के तरफ भी हुआ और उस समय कलाकारों के सामने जीविकोपार्जन की समस्या प्रमुख थी। बनारस, लखनऊ रामपुर,ग्वालियर, बेतिया आदि स्थानों में इन्हें शरण मिली। इस समय संगीत के क्षेत्र में ठुमरी एक नवीन गायन शैली के रूप में प्रयुक्त हो चुकी थी। कदर पिया, सदर पिया और सनद पिया ऐसे ठुमरी गायक लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में नियुक्त हो गए थे। इन कलाकारों ने इस गायकी को ख्याति प्रदान की। इन्हें कलाकारों के अन्य दरबारों में आने–जाने के क्रम में बनारस पहुंची।

वस्तुतः ठुमरी दो प्रकार की गई जाती है–

बोल बनाव की ठुमरी

बोल आलाप की ठुमरी

बोल बनाव की ठुमरी विलंबित मे तथा बोल बांत की ठुमरी मध्य लय में गाई जाती है। बोल बनाव की ठुमरी भाव प्रधान होती है तो बोल बांट की ठुमरी लय प्रधान। बोल बनाव की ठुमरिया भी दो अंगों में विभक्त है–

पूरब अंग

पंजाब अंग

पूर्व अंग की ठुमरिया भारत के पूर्वी अर्थात उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र और बिहार में प्रसिद्ध है जिनमे प्रकृति तथा भाषा के अनुरूप लोक संगीत अर्थात कजरी, चौती पूर्वी, होरी आदि पूर्व अंकित ठुमरीयों पर प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है।

पूरब अंग की भी दो शैलियां है–

लखनऊ

बनारस

प्राचीन शास्त्रकारों के अनुसार ठुमरी का प्रचार प्रसार लखनऊ दरबार द्वारा माना जाता है किंतु कलाकारों के आवागमन तथा रिश्तेदारी होने के कारण बनारस के अनेक कलाकारों ने ठुमरी गायन की शिक्षा प्राप्त की। बनारस के पुराने रईसों ने संगीत को संपूर्ण संरक्षण प्रदान किया। भारतीय संगीत को राजाओं, जमींदारों आदि ने संरक्षण देकर संरक्षित किया। हिंदू रईसों के यहां बाग बगीचों में महफिले सजती थी। ठुमरी,दादरा,टप्पा और चौती का जो दौर चलता था तो सुबह भैरवी होने के बाद ही समाप्त होता था।

आज यही कारण है कि स्वनामधन्य ठुमरी आज बनारस की पहचान है और ठुमरी के रस और भाव को बनारस का भाव माना जाता है।

यहां प्रयुक्त भाव, तान, मुर्कियां, भावुक ह्रदय तथा बंदिश के गीत में निहित भावना को सर्वथा साकार करने की क्षमता यहां के कलाकारों में है। ठुमरी गायन विधा,शास्त्रीय पांडित्य के अतिरिक्त यह भाव की विधा है जिसमें सिर्फ रागों का आधार लिया है, मूल रूप से भाव तथा श्रृंगार समाहित है। उदाहरण स्वरूप

राग भैरवी में विलंबित की ठुमरी

स्थाई –बाजूबंद खुल–खुल जाए सांवरिया ने जादू मारा

अंतरा –जादू की पुड़िया भर भर मारे अचरा उड़ी–उड़ी जाए रे

आज ठुमरी गायन में जिन्हें प्रसिद्धि प्राप्त है जैसे– शोभा गुर्टू निर्मला अरुण, लक्ष्मी शंकर, गिरिजा देवी, सविता देवी, रीता गांगुली, पूर्णिमा चौधरीह नैना देवी मालाश्री तथा पुरुष गायको में छन्नू लाल मिश्र जिन्हें ष्ठुमरी सम्राटष्की उपाधि प्राप्त है, इसके अलावा धर्मनाथ मिश्र, भोलानाथ मिश्र, महादेव प्रसाद,अजय पोहनकर ,पंडित चंद्र देव व्यास आदि।

टप्पा –

ऐतिहासिक आधार पर लखनऊ के नवाब के दरबारी गायक शोरी मियाँ अपने संगीत प्रदर्शन के लिए पंजाब गए, वहां की प्रचलित लोग धुनों ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया,जिसके आधार पर उन्होंने नवीन गायन शैली परिष्कृत की तथा उसका नाम टप्पा रखा। टप्पा गायन शैली को अपने शिष्यों को सिखा कर संगीत जगत में इसका विशेष तौर पर प्रचार प्रसार किया।

टप्पा गीत के दो भाग होते हैं– स्थाई और अंतरा। टप्पा की बंदिशों के गीत अधिकतर श्रृंगारपरक होते हैं।टप्पा की चलन चपल होती है।सभी टप्पों का काव्य पंजाबी भाषा में होता है। टप्पा का काव्य विशेष दो प्रेमियों के मिलन तथा वियोग से संबंधित होता है। टप्पा की बंदिशें ठुमरी की बंदिशें की तरह ही होती है, किंतु इसमें अतिद्रुत छोटे–छोटे तानों के टुकड़े बंदिशों में पिरोये रहते हैं,जिसके कारण शैली के पहचान सरलता से की जा सकती है।

टप्पा प्रायः आद्धा ताल मे गाया जाता है इसे कुछ लोग पंजाबी ताल भी कहते हैं। टप्पा गायन शैली मध्य में गाई जाती है, सौंदर्य परक तत्वों के रूप में कण, मुर्की,मींड,आदि का विशेष प्रयोग होता है। इस गायकी के लिए गले की विशेष तैयारी की आवश्यकता होती है तथा यह गायन विधा अधिकतर राग खमाज, काफी, आसावरी, पीलू, झिंझोटी, बड़वा आदि रागों में गाई जाती है।

दादरा

उपशास्त्रीय संगीत के प्रकारों में दादरा अर्धशास्त्रीय संगीत तथा लोक संगीत के बीच की मजबूत कड़ी है। दादरा गीत में भाव की दृष्टि से श्रृंगार रस एवं चंचलता की प्रधानता रहती है इसलिए इसकी प्रकृति प्रायः ठुमरी की तरह गृहीत होती है। दादरा गीत विधा को अधिकतर ठुमरी अंग के रागों में गाया

ISSN: 0030-5324
UGC CARE Group 1

बजाया जाता है। दादरा विधा ठुमरी की अपेक्षा हल्की होती है। ठुमरी गाने वाले गायक गायिकाएं दादरा गाते हैं। दादरा गायन में जन मन रंजन करने की पर्याप्त शक्ति होती है। इसलिए कभी–कभी दादरा हलका रूप धारण कर किसी अन्य राग का रूप धारण कर लेता है तथा कभी–कभी रागों के अधिक निकट पहुंचकर कलाकार को रागदारी का कौशल दिखाने का अवसर प्रदान करता है। इस गायन शैली मे साहित्य का प्रयोग बहुत ही सुंदर तरीके से किया जाता है उदाहरण स्वरूप

स्थाई– सांची कहे मोसे बतिया पिया कहां गंवाई सारी रतिया पिया

अंतरा– माधव पिया तोसे विनती करत हैं, अब ना करो मोसे से घतियाँ पिया

चौती

उप शास्त्रीय शैली में चौती बहुत ही सुंदर गायकी है। जिसकी शुरुआत धीमी गति से होती है तथा बाद में गति तेज हो जाती है तथा गायन के मध्य लय बदलती रहती है। चौती शब्द संस्कृत के चौत्र का अपभ्रंश रूप है। चौती का अर्थ है चौत्र। पूर्णिमा अर्थात पूर्णमासी का हिंदू धर्म में विशेष महत्व है। धार्मिक दृष्टि से पूजा संबंधी विशेष अनुष्ठान के लिए पूर्णिमा के दिन की विशेष मान्यता है।

चौत्र मास के प्रथम दिन इस गीत को गाने की परंपरा है। चौती गीतों में प्रेम के विविध रूपों की व्यंजना हुई है, इन गीतों में संयुक्त श्रृंगार की कहानी रागों में लिखित है, कहीं सर पर मटका रखकर दही बेचने वाली ग्वालन से कृष्ण के गोरस मांगने का दृश्य है, तो किन्ही गीतों में कृष्ण तथा राधा के प्रेम प्रसंग है तो कहीं राम सीता का आदर्श दांपत्य का वर्णन है। इन गीतों में बसंत की मस्ती एवं रंगीन भावनाओं का अनोखा सौंदर्य चित्रण प्राप्त होता है। पारंपरिक चौती गीतों में श्रृंगार एवं देवी देवताओं संबंधी पद प्राप्त होते हैं।इस गायन मे धार्मिक भावना भी मिलती है क्योंकि चौत का महीना बहुत से धार्मिक पर्वों एवं धार्मिक भावनाओं से जुड़ा है। इस गाने शैली में पद की शुरुआत श्रामाश्शब्द से होती है।

उदाहरण स्वरूप

स्थाई– कौन मासे अमवा मंजरइले हो रामा, कौन मासे लगले टिकोलवा हो रामा

अंतरा –फागुन मासे अमवा मंजरइले हो रामा, चौत मासे लगले टिकोलवा हो रामा

होरी

फागुन शब्द फल धातु में गुक प्रत्यय लगाकर बना है। फागुन मास में गाए जाने के कारण इन गीतों को होरी या फाग कहते हैं।

होली गीतों के नामकरण के लिए एक कथा प्रचलित है कि प्राचीन काल में हिरण्यकश्यप नाम का एक दुष्ट राजा था उसका प्रहलाद नाम का एक भक्त पुत्र था, क्योंकि पुत्र भगवान की भक्ति करता था इसलिए राजा ने अपने पुत्र को मारने अथक प्रयास किया किंतु भगवान पर अटूट आस्था के कारण भगवान ने सदा पुत्र की रक्षा की ।अंत में हिरण्यकश्यप ने अपनी बहन होलिका को कहा कि वह प्रहलाद को लेकर जलती ज्वाला मे बैठे क्योंकि होलिका को वरदान प्राप्त था कि वह कभी आग में नहीं जल सकती थी। अंततः भगवान की कृपा हुई और बालक की रक्षा हुई और होलिका आग में भस्म हो गई।

इस प्रकार की अन्य कथाओं का वर्णन होली गीतों में प्राप्त होता है इसके अलावा ब्रज क्षेत्र में होली के अवसर पर होली और रसिया का चोली दामन का साथ होता है। बसंत पंचमी से लेकर ब्रज क्षेत्र में चौत मास के अंत में फूलडोल नामक होली के रंगों के धूम रहती है।

होली गीत श्रृंगार परक होते हैं तथा होली गीतों का प्रधान विषय है राधा कृष्ण। होली गीतों में अधिकतर अबीर गुलाल तथा पिचकारी जैसे शब्दों का प्रयोग होता है उदाहरण स्वरूप

स्थाई – होली खेलन चलो आली रे सांवरिया, गुंजन बढ़त मृदंग धीरे–धीरे

अंतरा– झूलन अबीरकर कमलन पिचकारी गावत बजावत हस्त सब दै तारी नंद दुलारा प्राण प्यारा

कजरी– कजरी शब्द का उद्‌भव सावन में घिरने वाले काजल जैसे बादलों की कालीमा के कारण हुआ है। कजरी मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग विशेष कर बनारस मिर्जापुर एवं उसके आसपास के क्षेत्रों मे गाई जाती है। लोक संगीत की विधा विशेष कर और शास्त्रीय तौर पर प्रयुक्त होने लगी, श्रृंगार रस तथा विरह के मार्मिक शब्द प्रयुक्त होने के कारण यह शैली विशेष रूप से लोकप्रिय हुई। हर प्रकार के संगीत सम्मेलन अथवा कार्यक्रमों में होती है इसके अलावा पारिवारिक अथवा सामाजिक रीति रिवाजों मे भी इस गीत को गाने की प्रथा है।

जैसे–

घिरी घिरी आई सावन के बदरिया ना पानी बरसे बड़ी जोर सूझे नहीं चारों ओर

जियरा कांपै मोरा चमकेला बिजुरिया ना

बनारस एक संस्कृति संपन्न क्षेत्र है दूसरे शब्दों में कहें तो यह कला तथा संस्कृति की राजधानी क्षेत्र है जहां अनेक प्रकार की कला पुष्पित तथा पल्लवित हुई है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कला,धर्म, संस्कृति, साहित्य एवं संगीत इत्यादि अनेक क्षेत्रों की साधना स्थली के रूप में काशी का विशेष योगदान सर्वविदित है। दशकों पूर्व की भारतीय संगीत परंपरा के तीनों घटक गायन वादन एवं नृत्य की विभिन्न विधाएं बनारस के ख्यातिलब्ध कलाकारों के कला को मौलिकता तथा आत्मीयता प्रदान करती है। कला जगत के महान कलाकारों की श्रेणी में बनारस क्षेत्र से संबंधित विश्व विख्यात संगीतज्ञ अपनी कला साधना तथा कृतित्व के माध्यम से एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में अपने जीवन काल में ही संगीत जगत के लिए एक गौरव गाथा बन चुके हैं अथवा गौरव गान का पर्याय बन चुके हैं। इन संगीत साधकों के वंश परंपरा तथा वाराणसी की प्राचीन कालीन सभ्यता एवं प्रतिष्ठा में निरंतर वृद्धि करने में इन्होंने अपनी सशक्त भूमिका निभाई है। यहां की प्रचलित आदर्श उपशास्त्रीय संगीत परंपरा जो की अपने अंदर अनेक प्रकार के भावनाओं सौंदर्य तत्वों तथा विविधताओं को समेटे हुए हैं उनके श्री वृद्धि करने में बनारस के कलाकारों ने उच्च स्तर पर अपना योगदान दिया है तथा इन कलाकारों के योगदान से ही उपशास्त्रीय शैली परंपरा विश्व स्तर तक गौरवान्वित है।

निष्कर्ष

गायन में जब प्रयोग और आधुनिक तकनीक का मेल होता है तभी कला विकास के उच्च स्तर को छू पाती है तथा कलाकारों ऐसी रचना ही विश्व स्तर तक प्रसिद्ध हो पाती है। कलाकारों की प्रतिष्ठा तकनीक और प्रयोग पर निर्भर करता है उस तकनीक का प्रयोग कलाकार अपने संगीतात्मकता निखारने के लिए करता है। एक संगीतकार अथवा गायक एक परंपरा का पालन भले ही कर ले अपनी तकनीक तथा आधुनिक तकनीक का जब मिलाकर प्रयोग करता है तो संगीत में नवीन रंग भर जाता है और यही संगीत सीधे श्रोताओं तक पहुंचता है। मध्यकाल वह काल था जब संगीत गणिकाओं के हाथों में चला गया तथा उसकी स्थिति बहुत खराब हो गई और इस कारण उसका सामाजिक बहिष्कार किया गया था, उस काल में संपूर्ण संगीत हाशिये पर चला गया। गायक कलाकार अथवा अर्धशास्त्रीय शैली को उपेक्षा की नजरों से देखा जाता था। कुछ विद्वानों के तथा संगीतकारों द्वारा सार्थक प्रयोग तथा नवाचार पर विशेष जोड़ दिए जाने के कारण तथा शैलियों में सौंदर्य को अभिव्यक्त करने तथा गायन के सुंदर समापन के लिए ऊपशास्त्रीय संगीत के विशेष तौर पर किए गए प्रयोग के कारण धीरे–धीरे यह कला सम्मानित स्तर पर आने लगी तथा वर्तमान काल में यह स्थिति है की उपशास्त्रीय गायन के बिना कोई भी कार्यक्रम संपूर्ण नहीं माना जाता। बनारस के प्रतिष्ठित कलाकार तथा उनके प्रयोगों के कारण आज उपशास्त्रीय शैली अत्यंत लोकप्रिय है तथा राज्य सरकार के अलावा भारत सरकार तथा संगीत नाटक अकादमी जैसी संस्थाएं मिलकर इस दिशा में सफल एवं सार्थक कार्यक्रम एवं प्रतियोगिताएं आयोजित करवा रहे हैं जिसके परिणाम स्वरुप यह गायन शैली निरंतर सफलता के पद पर अग्रसर है तथा यह गायनशैली का प्रसार प्रसार विश्व स्तर तक हो रहा है।

References

1. The Banaras gharana aur kathak dance a study from the past to present ¼jaiswal vidushi] Ranjana Upadhyay- BHU-Shodhkosh 2023½
2. Acharya Brihaspati Sangeet Chintamani sangeet karyalaya1976 Hathras
3. Development of Banaras Gharana and Role of Mishra s bandhu (bath virat amar 2018 Gujrat University)
4. Banaras Gharane ke suvichar Sangeetagya pandit Bade Ramdas jee vyaktitva evam krititva
5. Banaras the cultural capital of India beginning cultural heritage and planning- Rana PV Sindhu 2015 BHU
6. Summary a discussion of the female voice of Hi distance Music Cambridge University 2002 Lalita DU paran
7. Classical Musical principle in ThumriMankar Netra 2023 (Research Nebula) a 8-1998 Chaudhuri Dr-Vimal kant Rai Bhartiya sangeet kosh-Vani publication.